☆ राष्ट्रवाद और भाषा

–दया प्रकाश सिन्हा
आई.ए.एस (सेवानिवृत्त)

इस आलेख के माध्यम से यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि राष्ट्रवाद और भाषा अविभाज्य रूप से जुड़े हैं। किसी भी राष्ट्र में, राष्ट्रवाद के विकास के साथ उस राष्ट्र की भाषा या भाषाओं की उन्नति होती है, और राष्ट्रवाद की भावना के क्षरण के साथ उसकी भाषाओं की अवनति। आज भारत में हिंदी ही नहीं, अपितु अन्य सब राष्ट्रीय भाषाओं, जैसे तमिल, तेलगु, बंगाली आदि भाषाओं का अवमूल्यन हुआ है। उसका मुख्य कारण है देश में राष्ट्रवाद का क्षरण।

यहां यह प्रश्न उठता है कि राष्ट्र क्या है ? राष्ट्र को परिभाषित करना बहुत कठिन कार्य है। अनेक विद्वानों ने इसे अलग–अलग व्याख्यायित किया है। मैंने इसे अपनी तरह से समझने की कोशिश की है।

परिवार एक 'बायलोजिकल' (जैविक) इकाई होता है। इसके सब सदस्य एक दूसरे से रक्त–संबंध से जुड़े होते हैं। परिवार जब कालान्तर में बढ़ते–बढ़ते इतना बड़ा हो जाता है कि बहुत बड़े भूभाग में बिखरे एक वंश का रूप ले ले, तो उसे 'क्लैन' कहते हैं। यह 'क्लैन' बढ़ते–बढ़ते 'ट्राइब' (कबीले) का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। क़बीले के सदस्यों में एकत्व का आधार ही रक्त–संबंध होता है। जब विभिन्न कबीलों के सदस्य, जिनके आपस में रक्त–संबंध न हो, एक साथ रहते हुए, अपनी कबीलाई या क्षेत्रीय पहचान से ऊपर उठकर, एक–दूसरे के निकट आते हैं तथा मानसिक और भावनात्मक रूप से एकत्व अनुभव करते हैं, तो वह पहचान 'राष्ट्र' का स्वरूप लेती है। 'राष्ट्र' के निर्माण में रक्त–संबन्ध की कोई भूमिका नहीं है। इस प्रकार राष्ट्र एक 'बायलोजिकल कान्सेप्ट' (जैविक अवधारणा) नहीं है।

प्रायः सहज बातचीच में 'सिटीजनशिप' (नागरिकता) तथा 'नेशनेलिटी' (राष्ट्रीयता) को पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार 'सिटीजन' (नागरिक) तथा 'नेशनल' (राष्ट्रिक) भी एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। यह तथ्यपरक नहीं है। 'सिटीज़नशिप' तथा 'सिटीज़न' विधिक शब्द हैं, जबकि 'राष्ट्रीय' और 'राष्ट्रिक' विधिमान्य शब्द नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति जो भारतीय मूल के माता–पिता की सन्तान है और भारत में जन्मा है, वह देश के विधान के अन्तर्गत भारत का 'सिटीजन' (नागरिक) माना जायेगा। कोई भी विदेशी विधिक प्रक्रिया के अन्तर्गत ही भारतीय 'सिटीजनशिप' (नागरिकता) प्राप्त कर सकता है। इसके बाद ही वह विधिक रूप से भारतीय 'सिटीजन' (नागरिक) माना जाएगा। इसके विपरीत 'राष्ट्रीयता' (नेशनेलिटी) और 'राष्ट्रिक' (नेशनल) विधिसंगत शब्द नहीं हैं। विधान में राष्ट्र (नेशन), राष्ट्रवाद (नेशलिज़्म), राष्ट्रिक (नेशनल) आदि परिभाषित नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र एक 'लीगल कॉन्सेप्ट' (विधिक अवधारणा) नहीं है।

तब फिर राष्ट्र क्या है ?

राष्ट्र एक भावनात्मक अवधारणा है। इसको विस्तार से समझने की आवश्यकता है।

रक्त, धर्म, भाषा, धन्धा, क्षेत्र आदि के द्वारा एक–दूसरे से संबद्ध अथवा असंबद्ध जन जब अपनी सामूहिक पहचान स्वीकार करते हैं, तो राष्ट्र अस्तित्व में आता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि उस राष्ट्र के सब राष्ट्रिकों की अन्य पहचानें विलुप्त हो जाती हैं। वे अपनी अन्य छोटी–छोटी पहचानों को जीवित रखते हुए ही भावना स्तर पर सर्वाधिक बड़ी पहचान 'राष्ट्र' के प्रति निष्ठावान होते हैं। उनकी इस बड़ी पहचान में, छोटी–छोटी पहचानें गौण हो जाती हैं। उदाहरण के लिए हम सब भारतीय अपने आप को भारत राष्ट्र का सदस्य मानते हैं। भावना के धरातल पर भारतीय राष्ट्रीयता की चेतना हमारी सबसे बड़ी पहचान है। साथ ही संभव है कि हम किसी धर्म को मानते हों। वह हमें एक धार्मिक पहचान देता है। हम एक प्रदेश में जन्में हों, या उसमें कार्य करते हों, तो वह हमें निवासीय या क्षेत्रीय या प्रदेशीय पहचान देता है। सब पहचानों को स्वीकार करते हुए, जब हम अपने आप को भारत राष्ट्र का सदस्य मानते हैं, तो अन्य पहचानें आच्छादित हो जाती हैं।

सैकड़ों वर्षों की अवधि में जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा आदि छोटी–छोटी पहचानों से निरपेक्षित राष्ट्रवाद की भावना धीरे–धीरे स्वतः विकसित होती है। एक भूमि पर साथ–साथ रहने, साझे इतिहास, साझी भाषा, साझे धर्म, साझी चुनौतियों, साझे उल्लास–उत्सवों और साझी आपदाओं की भी राष्ट्र–निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हजारों साल का सहजीवन और सहसंघर्ष रंग–रूप, भेष–भाषा, खान–पान और पंथ–आस्था में एक–दूसरे से नितांत भिन्न, विविध जनों में एकत्व की भावना उत्पन्न करता है, जिसकी अभिव्यक्ति राष्ट्र के रूप में होती है। किन्तु विचारशील नेतृत्व ही किसी भी जन को दिशा देते हुए राष्ट्रीय चेतना को सघन करता है और राष्ट्र का निर्माण करता है।

राष्ट्रीय चेतना ही राष्ट्रवाद के मूल में है। जब राष्ट्रीय चेतना दुर्बल होती है, तो राष्ट्र बिखरने लगता है। और राष्ट्रीय चेतना के दुर्बल होने के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा आदि की छोटी–छोटी मान्यताएँ संपुष्ट होकर जातिवाद, अलगाववाद, क्षेत्रवाद, मजहबी उन्माद का भीषण रूप लेकर राष्ट्र की बड़ी पहचान को चुनौती देने लगें या विरोधी शक्तियों के एजेंट राष्ट्रजन में फूट डालने में सफल हो जाएं या दिशाहीन, बौने लोग नेतृत्व प्राप्त कर लें, नेतृत्व बिक जाए या ऐसा ही कुछ और। कुछ विचारधाराएँ भी राष्ट्रवाद को नकारती हैं। साम्यवाद राष्ट्रभावना को नकार कर अपने अनुयायिओं में साम्यवादियों की अन्तर्राष्ट्रीय एकात्मता में विश्वास करता है। इसी प्रकार इस्लाम भी देश और राष्ट्र की मर्यादाओं को अस्वीकार करते हुए इस्लामिक उम्मा को मानता है। वैश्विक बाज़ारवाद भी राष्ट्रवाद को क्षीण कर रहा है।

राष्ट्रीयता की रीढ़ है भावना। और भावना कभी चिरस्थायी नहीं होती। प्रेम, क्रोध, वितृष्णा आदि भी भावनाएँ हैं। यह भावनाएँ चिरस्थायी नहीं रहतीं, और उन्हें बनाए रखने के लिए सतत प्रयत्न करना पड़ता है। राष्ट्रवाद भी एक भावना है। अतएव राष्ट्रवाद की चेतना का भी क्षरण स्वाभाविक है। यह चिरस्थाई तब ही हो सकती है, जब सुविचारित रूप से उसे सतत संपुष्ट किया जाए। इस संदर्भ में राजनैतिक और बौद्धिक नेतृत्व का यह दायित्व बनता

है कि वे राष्ट्रवाद की भावना और राष्ट्रीय चेतना को बराबर बनाए रखने और सघन करने के लिए सतत उपाय करते रहें।

राष्ट्र के निर्माण में भाषा का महत्व नींव के पत्थर के समान है। जैसे नींव का पत्थर कमज़ोर हो जाए या अपने स्थान से हिल जाए तो भवन गिर जाता है, उसी प्रकार भाषा के नष्ट होने या काट दिये जाने पर, राष्ट्र भी पतित हो जाता है।

इतिहास साक्षी है कि सभी आक्रमणकारी पराजित देशों पर अपना आधिपत्य सुदृढ़ करने के पहले, उनकी भाषा नष्ट करते हैं। विजित जन का प्रतिरोध तोड़ने के लिए उनपर अपनी भाषा थोपते हैं। अरबी साम्राज्यवादी इस्लाम का जब विस्तार मिश्र, ईरान, तुर्की, अफ़गानिस्तान आदि देशों में हुआ, तो उसने वहां अरबी भाषा को थोपा था। इन देशों की प्राचीन भाषाओं और लिपियों को योजनाबद्ध तरीके से नष्ट करके, उनको अपने गौरवशाली अतीत से काट दिया था। भाषा के साथ विजित देशों का आत्मविश्वास भी तोड़ दिया। साउथ अमेरिका के ब्राजील में पुर्तगाली बोली जाती है और क्यूबा, चिली, मैक्सिको, अर्जेण्टीना आदि देशों में स्पेनिश भाषा, क्योंकि इन देशों को विदेशियों ने अक्रांत कर अपनी भाषाएँ थोप दी थीं।

इंग्लैण्ड के इतिहास से :

राष्ट्रीय चेतना और भाषा के रिश्ते का सर्वाधिक सटीक रूपायन इंग्लैण्ड के इतिहास से प्राप्त होता है। सन् 1066 में नोरमन (फ्रांसीसी वंशज) राजा विलियम ने इंग्लैण्ड को पराजित करके वहाँ नोरमन शासन की नींव डाली। उसने फ्रेंच को राजभाषा घोषित किया। तीन सौ वर्षों से फ्रेंच भाषा इंग्लैण्ड में राजकाज, सामन्त वर्ग, उच्चाधिकारियों, अदालतों, स्कूलों और विद्यालयों की भाषा बन गई। पार्लियामेंट में भी फ्रेंच का बोलबाला हो गया। अंग्रेजी गाँव और अनपढ़ों की भाषा बनकर अन्तिम सांसे गिनने लगी। फ्रेंच बोलना सभ्यता की पहचान बन गया। जो फ्रेंच न जाने, वो असभ्य। उस समय इंग्लैण्ड में फ्रेंच की स्थिति वैसी ही सम्मानहीन और दुत्कारीसी थी, जैसी आज भारत में हिन्दी की है। उस समय पराजित अंग्रेजी समाज आत्मविश्वासहीन था, गौरव और राष्ट्रीय चेतना से शून्य।

सन् 1338 में इंग्लैण्ड के नोरमन (फ्रांसीसी वंशज) राजा एडवर्ड तृतीय का युद्ध फ्रांस के राजा फिलिप षष्ठम् से हो गया। यह युद्ध रुक–रुक कर लगभग सौ वर्षों तक चला। इस युद्ध में नोरमन राजा को इंग्लैण्ड की पराजित अंग्रेज प्रजा की सहायता की आवश्यकता थी। उनके सहयोग के बिना युद्ध जीतना संभव नहीं था। इसलिए उनका हृदय जीतने के लिए लगभग तीन सौ वर्षों के शासन के बाद फ्रांसीसी के स्थान पर उसने अंग्रेजी को राजभाषा घोषित किया। सन् 1362 में पहली बार इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट को उन्होंने फ्रेंच भाषा में संबोधित नहीं किया। उसके स्थान पर अंग्रेजी में संबोधित किया।

इसने पूरे अंग्रेजी समाज में जैसे नए प्राण फूँक दिए। राष्ट्रीयता के ज्वार ने थके–हारे, गिरे–पड़े अंग्रेजी समाज को ऐसा संगठित किया कि उन्होंने फ्रांस को मिट्टी चटाकर ही दम लिया। भाषा के पुनरुद्धार ने राष्ट्र को उठा कर खड़ा किया।

मैकॉले का सपना : भारतीय संदर्भ

ईस्ट इंडिया कंपनी का सन् 1830 तक भारत के अधिकांश भू–भाग पर क़ब्ज़ा हो गया था। गवर्नर जनरल सहित ईस्ट इंडिया कंपनी के सभी उच्चाधिकारी चिन्तित थे कि किस प्रकार भारत में अंग्रेजी साम्राज्य को चिरस्थाई बनाया जाए। उस समय कंपनी के आगे एक और प्रश्न भी था। इतने बड़े भू–भाग की भारतीय जनता के स्कूलों का पाठ्यक्रम क्या हो ? क्या उनको पारम्परिक संस्कृत पाठ्यशालाओं और मुस्लिम मकतबों के अनुसार पढ़ाया जाए या कि इंग्लैण्ड के स्कूलों के नमूने पर शिक्षा दी जाए ? अधिकारियों का एक दल हिन्दुस्तानियों की परंपरागत शिक्षा के पक्ष में था, तो दूसरा अंग्रेजी शिक्षण के पक्ष में। कंपनी के अधिकारी अपने परामर्श में एकराय नहीं थे। उनके विवाद का अन्त लॉर्ड मैकॉले के सुझाव ने किया, जिसे गवर्नर–जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने स्वीकार करके अंग्रेजी को भारतीयों की शिक्षा का माध्यम बनाने का आदेश दिया।

लार्ड मैकॉले के सुझाव में यह तर्क था कि अंग्रेजी शिक्षा अंग्रेजी साम्राज्य की सुरक्षा और उसे चिरस्थाई बनाने में भी कामगार होगी। उसने गवर्नर जनरल को सन् 1835 में लिखे अपने 'मिनिट्स' में लिखा कि अगर हिन्दुस्तानियों को अंग्रेजी में शिक्षित करेंगे तो, ***''हम एक ऐसे वर्ग का निर्माण करेंगे जो केवल रंग और रक्त में हिन्दुस्तानी होगा, लेकिन अपनी पसन्द, अपनी सोच, अपनी नैतिकता और बुद्धि में एक अंग्रेज होगा, और जो हमारे और लाखों हिन्दुस्तानियों की प्रजा के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, बिचौलिए का काम करेगा।''***

मैकॉले का सपना सच ही हुआ। कुछ ही वर्षों में अंग्रेजी स्कूलों ने हजारों–लाखों 'भूरे अंग्रेजों' की फौज तैयार कर दी, जो अंग्रेजों के समान ही भारत और भारतीय संस्कृति, सभ्यता, विरासत और उससे संबंधित हर चीज़ को हेय दृष्टि से देखते थे। कालान्तर में, यह 'भूरे अंग्रेज' भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के सबसे बड़े हिमायती और स्तम्भ सिद्ध हुए। स्वाभाविक रूप से, इन 'भूरे अंग्रेजों' में राष्ट्रीय चेतना का एकदम अभाव था।

बाद में सुभाष बोस के दबाव में गांधीजी ने पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य (दिसम्बर, 1929) में स्वीकार तो किया, किन्तु जब देश की आजादी का वक्त आया तो उन्होंने 15 अगस्त, 1947 को पूर्ण स्वराज के स्थान पर अंग्रेजी ताज के अन्तर्गत आधी आज़ादी (डोमिनियन स्टेट्स) स्वीकार लिया। पूर्ण स्वराज के लिए कोई आग्रह नहीं किया। अपना अरबों–खरबों का निवेश भारत से निकाल लेने के बाद ही अंग्रेजों ने भारत को 26 जनवरी, 1950 को पूर्ण स्वराज दिया।

'भूरे अंग्रेजों' की अंग्रेज राज को की गई सेवाओं को अंग्रेज नहीं भूले, इसलिए देश को आज़ाद करके सत्ता इन्हीं को सौंप गए।

राष्ट्रीय चेतना का क्षरण और हिन्दी का पतन :

जब से 'भूरे अंग्रेज' जिनके नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रवाद क्षीण हुआ था, देश की आज़ादी के बाद सत्तासीन हुए, तो राष्ट्रवाद का और पतन स्वाभाविक था। राष्ट्रवाद के पतन के साथ

ही दबे–पड़े जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद और मज़हबी उन्माद के पिशाच प्रकट हो गए। 'भूरे अंग्रेजों' का राष्ट्रवादहीन नेतृत्व कभी इस पड़ोसी देश, कभी उस पड़ोसी देश से पिटता रहा, और वह अपनी झेप मिटाने के लिए शान्ति, शान्ति का जाप करता रहा।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री जब लंदन में कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे, तो उन्होंने अपने पिता को जुलाई 15, 1910 को पत्र लिखा जिसका आशय था कि वे आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में दाखिला लेना चाहते हैं, क्योंकि अब ***''कैम्ब्रिज में बहुत हिन्दुस्तानी भर गए हैं।''*** (स्टेनलीवोपार्ट : ऑक्सफोर्ड : पृष्ठ : 23)। वे नहीं चाहते थे कि लंदन में भी हिन्दुस्तानियों का ही साथ रहे। लंदन में वह गोरे अंग्रेजों के साथ के लिए उतावले हो रहे थे। बहत्तर–तिहत्तर वर्ष की आयु में उन्होंने अमेरिकी राजदूत जे.के. गैलब्रेथ से कहा – ***''क्या आप जानते हैं, मैं इस देश में हुकुमत करने वाला आखिरी अंग्रेज हूँ।''*** (जे.के. गैलब्रॅथ : 'ए लाइफ़ ऑफ़ अवर टाइम्स : मेमोयर' : बास्टन, 1981, पृष्ठ 408) अन्ततः असलियत निकल आई। क़ब्र में मैकॉले सन्तोष से मुस्कुराया होगा। स्वतंत्र भारत का प्रधानमंत्री अपने आपको अंग्रेज बताकर गर्वित अनुभव कर रहा है। क्या इसी कारण से 15 अगस्त, 1947 की आधी रात को, जब अंग्रेजी झंडा उतारा जा रहा था, और तिरंगा फहराया जा रहा था, उन्होंने अपना भाषण अंग्रेजी में दिया ?

संविधान सभा ने एक स्वर में हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव पारित किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री को यह स्वीकार नहीं था। इस प्रस्ताव के पारित होने के पूर्व उन्होंने घोषित किया था कि वे हिन्दी को राजभाषा नहीं बनने देंगे। उनकी घोषणा के बावजूद जब संविधान सभा ने उपर्युक्त प्रस्ताव पारित किया, तो उनकी ऊर्जा इस प्रस्ताव को निष्प्रभावी करने में लग गई। यह निर्णय लिया गया कि हिन्दी राजभाषा के रूप में पंद्रह वर्षों के बाद लागू की जायेगी। तब तक अंग्रेजी पहले के समान बनी रहेगी।

इस बीच 1961 में देश के सब मुख्यमंत्रियों ने एकमत से यह प्रस्ताव पारित किया कि देश की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी स्वीकार की जाए, जैसे योरोप की सभी भाषाएँ रोमन लिपि में लिखी जाती हैं। उनका तर्क था कि यह राष्ट्रीय एकता की दिशा में समुचित कदम होगा। किन्तु जब यह प्रस्ताव केन्द्र सरकार के पास गया तो, उसने इसे ठंडे बस्ते में डालकर खत्म कर दिया। देश ने राष्ट्रीय एकत्व का एक बड़ा अवसर खो दिया।

आज देश की स्थिति यह है कि देश की 100 करोड़ जनसंख्या में से यदि 99 करोड़ 95 लाख हिन्दी को एकमात्र राजभाषा बनाना चाहें, और अगर मिजोरम राज्य के मात्र 5 लाख लोग न बनाना चाहें, तो हिन्दी एकमात्र राजभाषा नहीं बन सकती। अंग्रेजी अपने सिंहासन पर पूर्ववत् बनी रहेगी, सदा–सदा के लिए।

भारतीय भाषाओं का दर्द :

आज हिन्दी समेत सभी अन्य भाषाएँ जैसे तमिल, तेलगू आदि अपने ही देश में निष्कासित, तिरस्कृत हैं, जबकि विदेशी भाषा अंग्रेजी हिन्दुस्तानियों के सर माथे पर है। ऐसा तो होना ही था। स्वतंत्रता–संघर्ष के दिनों से ही देश पर हावी 'भूरे अंग्रेजों' ने आज़ादी के

बाद सत्ता पर कब्ज़ा करके देश को आत्मविश्वासहीन बनाकर भारतीयों के राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना को क्षीण कर दिया है। वे अपनी भाषाओं को कैसे सम्मान की दृष्टि से देख सकते हैं ? भारतीय राष्ट्रवाद के पतन के साथ भारतीय भाषाओं का पतन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

कुछ दिनों पहले मेरे नाती ने पूछा कि आपके छोटे भाई का जन्म किस सन् में हुआ था। मैंने बताया – सन् सैंतीस में। मेरा उत्तर उसकी समझ में नहीं आया। उसने पूछा, – सैंतीस माने ? मैंने बताया – 'थर्टी सेवन'। वह समझ गया। यही बात जब मैंने अपने एक मलयाली मित्र को बतायी तो वह हंसने लगे। मैंने पूछा इसमें हंसने की क्या बात है ? वह बोले – मेरे पोते का भी यही हाल है। अगर मैं उससे मलयाली में कहूँ 'मुपत्तियेल'। वह तुरन्त पूछेगा – व्हाट ? जब मैं कहूंगा 'थर्टी सेवन', तब वह भी समझ जायेगा।

आज नई पीढ़ी के मध्यवर्गीय बच्चे, चाहे वह हिन्दी प्रदेश के हों, या बंगाली, तमिल, उड़िया, कन्नड़ या अन्य प्रदेशों के, अपनी मातृभाषा भूलते जा रहे हैं। और मातृभाषा के साथ राष्ट्रीय चेतना को भी।

मेरे एक मित्र कन्नड़ के प्रख्यात लेखक हैं। वह बताने लगे कि उनका बेटा कन्नड़ बोल तो लेता है, लेकिन लिखना–पढ़ना नहीं जानता। उसकी कन्नड़ साहित्य में कोई रुचि नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि नई पीढ़ी के संभ्रान्त घराने के खूब पढ़े–लिखे लड़के कन्नड़ न पढ़ना जानते हैं और न पढ़ना चाहते हैं। कन्नड़ का साहित्य इतना समृद्ध है, इतना श्रेष्ठ है कि विश्व के किसी भाषा के साहित्य से कम नहीं है। अचानक उनके स्वर में हताशा आ गई। वह बड़ी पीड़ा से बोले – ***''कौन पढ़ेगा यह साहित्य? क्या यह ऐसे ही नष्ट हो जायेगा ? बहुत सी ऐसी जनजातियाँ हैं, जिनकी केवल बोलने की भाषा है; लिखी नहीं जा सकती, क्योंकि उनके पास लिपि नहीं है।''*** उनकी खाली निगाहों में दर्द उभर आया – ***''क्या कन्नड़ भी इसी तरह बोलने की भाषा बनकर रह जाएगी ?''*** मैं इसका उत्तर नहीं दे सका। क्या उत्तर देता।

यह दर्द केवल कन्नड़ का नहीं है। यह दर्द भारत की सभी राष्ट्रीय भाषाओं का है। क़ब्र में मैकॉले मुस्कुरा रहा है।

बी–255, सेक्टर–26,
नोएडा–201301
दूरभाष : 9891510230
dpsinha50@hotmail.com